गुटनिरपेक्षता की नीति
(THE POLICY OF NON-ALIGNMENT)

विश्व राजनीति में भारतीय दृष्टिकोण मुख्यतया असंलग्नता अथवा गुटनिरपेक्षता का रहा है। इसे भारतीय विदेश नीति का सार तत्व कहा जाता है। गुटनिरपेक्षता गुटों की पूर्व उपस्थिति का संकेत कर देती है। जब भारत स्वाधीन हुआ तो उसने पाया कि विश्व की राजनीति दो विरोधी गुटों में बंट चुकी है। एक गुट का नेता संयुक्त राज्य अमरीका और दूसरे का सोवियत संघ था। विश्व के अधिकांश राष्ट्र दो विरोधी खेमों में विभाजित हो गये और भीषण शीत-युद्ध प्रारम्भ हो गया। शीत-युद्ध का क्षेत्र विस्तृत होने लगा और इसके साथ-साथ एक तीसरे महासमर की तैयारी होने लगी। स्वतन्त्र भारत के लिए यह एक विकट समस्या थी कि इस स्थिति में वह क्या करे? ऐसी स्थिति में भारत या तो दोनों में से किसी एक का साथ पकड़ सकता था अथवा दोनों से पृथक् रह सकता था। भारत के नीति निर्धारक कहने लगे कि वे संसार के किसी भी गुट में सम्मिलित नहीं होंगे। गुटबन्दी में शामिल होना न तो भारत के हित में था न संसार के। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सभी प्रश्नों पर वे गुटनिरपेक्षता की नीति का अवलम्बन करेंगे। भारत ने दोनों गुटों से पृथक् रहने की जो नीति अपनायी उसे '**गुटनिरपेक्षता**' की नीति के नाम से जाना जाता है।

इस नीति का आशय है कि भारत वर्तमान विश्व राजनीति के दोनों गुटों में से किसी में भी शामिल नहीं होगा, किन्तु अलग रहते हुए उनसे मैत्री सम्बन्ध कायम रखने की चेष्टा करेगा और उनकी बिना शर्त सहायता से अपने विकास में तत्पर रहेगा। भारत की गुटनिरपेक्षता एक विधेयात्मक, सक्रिय और रचनात्मक नीति है। इसका ध्येय किसी दूसरे गुट का निर्माण करना नहीं वरन् दो विरोधी गुटों के बीच सन्तुलन का निर्माण करना है। असंलग्नता की यह नीति सैनिक गुटों से अपने आपको दूर रखती है, किन्तु पड़ोसी व अन्य राष्ट्रों के बीच अन्य सब प्रकार के सहयोग को प्रोत्साहन देती है।

गुटनिरपेक्षता का अर्थ है विश्व के किसी भी गुट के साथ जुड़ा हुआ न होना, अर्थात् नाटो, सीटो या वारसा संगठनों जैसे किसी सैनिक गठबन्धन में शामिल न होना। यह ऐसी नीति है जो विश्व में स्वतन्त्र नीति का अनुसरण करती है और हर समस्या पर अपने विचारों को प्रकट करने और अपने दृष्टिकोण को अपनाने के लिए स्वतन्त्र समझती है। यह किन्हीं पूर्वाग्रहों के आधारों पर कार्य नहीं करती। यह समस्याओं पर वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाती है, व्यक्तिनिष्ठ नहीं।

भारत ने गुटनिरपेक्षता की विदेश नीति क्यों अपनायी? इसके कई सशक्त कारण हैं :

- **प्रथम**, किसी भी गुट में शामिल होकर अकारण ही भारत विश्व में तनाव की स्थिति पैदा करना उपयुक्त नहीं मानता।

- **द्वितीय**, भारत अपने विचार प्रकट करने की स्वाधीनता को बनाये रखना चाहता है। यदि उसने किसी गुट विशेष को अपना लिया तो उसे गुट के नेताओं का दृष्टिकोण अपनाना पड़ेगा।
- **तृतीय**, भारत अपने आर्थिक विकास के कार्यक्रमों को और अपनी योजनाओं की सिद्धि के लिए विदेशी सहायता पर बहुत कुछ निर्भर है। गुटनिरपेक्षता की नीति से सोवियत संघ तथा अमरीका दोनों से एक ही साथ सहायता मिलती रही है।
- **चतुर्थ**, भारत की भौगोलिक स्थिति गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाने को बाध्य करती थी। साम्यवादी देशों से हमारी सीमाएं टकराती थीं। अतः पश्चिमी देशों के साथ गुटबन्दी करना विवेक-सम्मत नहीं था। पश्चिमी देशों से विशाल आर्थिक सहायता मिलती थी। अतः साम्यवादी गुट में सम्मिलित होना भी बुद्धिमानी नहीं थी। **पं. नेहरू** ने स्पष्ट कहा था कि "किसी गुट के साथ सैनिक सन्धियों में बंध जाने के कारण सदा उसके इशारे पर नाचना पड़ता है और साथ ही अपनी स्वतन्त्रता बिल्कुल नष्ट हो जाती है। जब हम असंलग्नता का विचार छोड़ते हैं तो हम अपना लंगर छोड़कर बहने लगते हैं। किसी देश से बंधना आत्म-सम्मान खोना है, यह बहुमूल्य निधि का विनाश है।"

यदि गुटनिरपेक्षता की नीति का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया जाये तो यह कहा जा सकता है कि इसकी यात्रा के कई पड़ाव रहे हैं और यह एक गतिशील विदेश नीति (dynamic foreign policy) सिद्ध हुई है। इसके विभिन्न चरण इस प्रकार हैं :

1. 1947 **से** 1950 **तक**—अपने प्रारम्भिक वर्षों में गुटनिरपेक्षता की भारतीय नीति बड़ी अस्पष्ट थी। कई लोग इसे 'तटस्थता' का पर्यायवाची मानते थे और स्वयं नेहरू इसे 'सकारात्मक तटस्थता' कहकर पुकारते थे। इस काल में भारत की प्रवृत्ति अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में पश्चिमी गुट की तरफ झुकी हुई थी। पश्चिमी गुट की तरफ भारतीय झुकाव के कई कारण थे। सुरक्षा के मामले में भारत पश्चिमी गुट पर निर्भर था। भारतीय सेना का संगठन ब्रिटिश पद्धति पर आधारित था और इसलिए हम ब्रिटेन के साथ हर मामले में पूरी तरह सम्बद्ध थे। हमारी शिक्षा पद्धति पश्चिमी शिक्षा प्रणाली पर आधारित थी और भारत के उच्च-शिक्षित वर्ग पर पाश्चात्य देशों का प्रभाव था। इस काल में भारत के व्यापारिक सम्बन्ध केवल पश्चिमी राष्ट्रों से थे। भारत का लगभग 97% विदेशी व्यापार पश्चिम से होता था। ब्रिटेन एवं अमरीका से ही खासतौर से भारत को आर्थिक एवं तकनीकी सहायता मिल रही थी। इस समय सोवियत संघ आर्थिक और सैनिक दृष्टि से भारत को सहायता देने की स्थिति में नहीं था। अतः भारत का झुकाव पश्चिमी देशों की तरफ अधिक रहा। इसी कारण भारत ने पश्चिमी जर्मनी को मान्यता दे दी क्योंकि उसका सम्बन्ध पश्चिमी गुट से था, जबकि पूर्वी जर्मनी को मान्यता प्रदान नहीं की। कोरिया युद्ध में प्रारम्भ से ही भारत ने पश्चिमी गुट का पक्ष लिया और उत्तरी कोरिया को आक्रामक घोषित कर दिया।

2. 1950 **से** 1957 **तक**—1950 से 1957 के काल में सोवियत संघ के प्रति भारत के दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन आया। इसका कारण यह था कि 1953 में स्टालिन की मृत्यु के बाद भारत के प्रति सोवियत दृष्टिकोण काफी उदार होने लगा था। इस काल में अमरीका के साथ भारत के सम्बन्धों में कटुता आने लगी, क्योंकि 1954 में अमरीका और पाकिस्तान के मध्य एक सैनिक सन्धि हुई जिसके अनुसार अमरीका ने पाकिस्तान को विशाल पैमाने पर शस्त्र देने का निर्णय किया। गोआ के प्रश्न पर भी अमरीका ने पुर्तगाल का समर्थन किया जबकि सोवियत संघ ने भारतीय नीति का हमेशा समर्थन किया। इस काल में भारत के प्रधानमन्त्री नेहरू ने सोवियत संघ की यात्रा की तथा सोवियत नेताओं ने भारत की सद्भावना यात्राएं कीं। भारत और सोवियत संघ के बीच व्यापार बढ़ा और भारत को सोवियत संघ से पर्याप्त आर्थिक सहायता मिलने लगी। सोवियत संघ ने भारत को भिलाई इस्पात कारखाने के लिए आर्थिक तकनीकी सहायता भी दी। 1956 में स्वेज संकट उत्पन्न होने पर भारत ने सोवियत संघ की भांति ब्रिटेन और फ्रांस के आक्रमण की निन्दा की। हंगरी की समस्या पर भी भारत की नीति सोवियत संघ का समर्थन करती रही। संयुक्त राष्ट्र में जब हंगरी की समस्या पर विचार हुआ तो भारतीय प्रतिनिधि ने सोवियत हस्तक्षेप की कटु आलोचना नहीं की।

3. 1957 **से** 1962 **तक**—ऐसा कहा जाता है कि 1957 के बाद भारत की नीति पुनः पश्चिमी गुट की ओर झुकने लगी। इसके कई कारण थे। 1957 के आम चुनाव में भारत के केरल राज्य में साम्यवादियों की विजय हुई। भारत में इस समय गम्भीर आर्थिक संकट विद्यमान था, देश में खाद्यान्न तथा विदेशी मुद्रा की कमी ने भारत को बाध्य कर दिया कि वह पश्चिमी गुट के देशों के साथ मेल-जोल बढ़ाये। इस काल में नेहरू ने अमरीका की सद्भावना यात्रा की तथा भारत पश्चिमी साम्राज्यवाद का विरोध दबी जबान से करने लगा।

4. 1962 **का चीनी आक्रमण तथा भारतीय गुटनिरपेक्षता**—नवम्बर 1962 में चीनी आक्रमण के समय गुटनिरपेक्षता की नीति की अग्नि परीक्षा हुई। अनेक आलोचकों ने भारत की असंलग्नता की नीति की कटु आलोचना की। यह कहा गया कि भारत की निर्गुट नीति राष्ट्रीय हितों की रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ रही है। **ए. डी. गोरवाला** के शब्दों में, "विदेश नीति का लक्ष्य राष्ट्र के हितों को सुरक्षित करना होता है। सबसे बड़ा हित राष्ट्र की अखण्डता है और इसमें हमारी नीति विफल सिद्ध हुई है।" दूसरी आलोचना यह थी कि अपनी रक्षा के लिए पश्चिमी राष्ट्रों के साथ सैनिक गठबन्धन में शामिल न होकर भारत ने भारी

भूल की है। यदि भारत पश्चिमी देशों के साथ मिलकर किसी सैनिक संगठन का सदस्य होता तो चीन उस पर हमला करने की हिम्मत नहीं करता। यह भी कहा गया कि गुटनिरपेक्षता की नीति पंचशील के शान्तिवादी सिद्धान्तों पर आधारित है और इसी कारण हमने देश की प्रतिरक्षा के लिए आवश्यक तैयारी करने में घोर उपेक्षा की है, जिसके कारण हमें भारी पराजय और क्षति उठानी पड़ी। यह भी कहा गया कि निर्गुट नीति के कारण हम अपने मित्रों की संख्या में वृद्धि नहीं कर पाये। हमने एशिया और अफ्रीका के नवीन राज्यों की स्वतन्त्रता का समर्थन किया, किन्तु जब चीन ने हम पर हमला किया तो किसी ने हमारा साथ नहीं दिया। इसके विपरीत, पश्चिमी देशों—अमरीका, इंगलैण्ड, कनाडा, पश्चिमी जर्मनी ने हमें तत्काल भारी मात्रा में हवाई जहाजों द्वारा रण-सामग्री पहुंचायी। आलोचकों ने यह भी कहा कि हमारी नीति गुटनिरपेक्षता की कही जाती है, किन्तु जब हम साम्यवादी गुट से सम्बन्धित एक बड़े सदस्य से लड़ रहे हैं और दूसरे गुट के देश हमें प्रचुर मात्रा में आर्थिक सहायता दे रहे हैं तो क्या हमारी नीति को निर्गुट कहा जा सकता है। इन आलोचनाओं के उत्तर में पं. नेहरू का कहना था कि चीन का मुकाबला करने के लिए भारत ने जो भी शस्त्रास्त्र की सहायता ली है उसके साथ किसी प्रकार की शर्त नहीं लगी है और बिना शर्त सहायता लेने को असंलग्नता की नीति से दूर हटना नहीं कहा जा सकता। चीनी हमले के बाद 6 नवम्बर, 1962 को भारत में तत्कालीन अमरीकी राजदूत **गॉलब्रेथ** ने स्पष्ट कहा कि "सैनिक सहायता देकर हम भारत को पश्चिमी देशों के सैनिक गुट में शामिल नहीं करना चाहते और न हम भारत की असंलग्नता की नीति को बदलने के ही समर्थक हैं।" अमरीकी राष्ट्रपति **कैनेडी** ने कई बार कहा कि "अमरीका भारत की तटस्थ नीति का स्वागत करता है।" चीनी आक्रमण के समय अमरीकी वायु सेना ने 90 घण्टे के भीतर 1 हजार टन रण-सामग्री को अमरीका से भारत पहुंचा दिया। दूसरी ओर सोवियत संघ ने भी अपने मिग-विमान देने का तथा इसका कारखाना बना देने का वचन दिया। किसी एक गुट का सदस्य बन जाने पर भारत को दोनों महाशक्तियों से लाभ प्राप्त नहीं हो सकता था। अमरीकी विदेश सचिव **डीन रस्क** ने स्वयं कहा था कि वर्तमान परिस्थिति में असंलग्नता की नीति भारत के लिए सर्वोत्तम है। यदि असंलग्नता की नीति को छोड़कर भारत अमरीकी गुट में शामिल हो जाता तो भारत-चीन सीमा-संघर्ष शीत-युद्ध का एक अंग बन जाता इसलिए पं. नेहरू ने स्पष्ट कर दिया कि भारत अपनी रक्षा के लिए सभी मित्र-राज्यों से सहायता लेगा, लेकिन असंलग्नता की नीति का परित्याग नहीं करेगा।

भारत-पाक युद्ध (1965) और गुटनिरपेक्षता—1963 में सोवियत संघ द्वारा भारत-चीन सीमा-विवाद पर भारत का स्पष्ट रूप से खुला समर्थन किया गया। यह घटना भारत की निर्गुट नीति की एक शानदार सफलता है। 1965 के भारत-पाक संघर्ष के समय पाकिस्तान के बहुत बड़े समर्थक अमरीका ने भारत और पाकिस्तान दोनों पर आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिये और यह घोषणा की कि जब तक दोनों पक्ष युद्ध बन्द नहीं कर देते तब तक उन्हें किसी तरह की सैनिक सहायता नहीं दी जायेगी। इससे स्पष्ट हो गया कि गुटों में सम्मिलित होने पर भी पाकिस्तान को कोई लाभ नहीं पहुंचा। 1971 की भारत-सोवियत सन्धि तथा गुटनिरपेक्षता बांग्लादेश की क्रान्ति और तत्कालीन सैनिक शासन की दमनकारी नीति के परिणामस्वरूप दक्षिणी एशिया में उत्पन्न संकट के समय 'भारत-सोवियत मैत्री सन्धि' भारतीय हितों की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण घटना कही जा सकती है। अमरीका और चीन के बीच भारत जैसे राज्य के हितों की कीमत पर विकसित दितान्त के सन्दर्भ में भारत और सोवियत संघ की यह साझेदारी एक वरदान सिद्ध हुई। गुटनिरपेक्षता की पवित्रता की दुहाई देने वाले भी यह स्वीकार करेंगे कि 1971 के भारत-पाक संघर्ष में यह सन्धि भारत को नया विश्वास, आत्म-सम्मान और इस भू-भाग में अपनी हैसियत का अहसास कराने में सहायक सिद्ध हुई। भारत-सोवियत मैत्री सन्धि ने दक्षिण एशिया की वस्तुस्थिति को निर्णायक मोड़ देते हुए तत्कालीन परिस्थितियों में भारत की सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। भारत-सोवियत मैत्री सन्धि के सम्बन्ध में कतिपय क्षेत्रों में यह सन्देह हो गया था कि भारत अब गुटनिरपेक्ष नहीं रहा। कई जगह तो यह भी कहा जाने लगा कि नयी दिल्ली मास्को की कठपुतली मात्र है और स्वतन्त्र निर्णय के अधिकार को खो चुकी है, किन्तु ऐसे आरोप निराधार सिद्ध हुए। भारत कुछ समय के लिए सोवियत संघ के अति निकट अवश्य हो गया था या यों कहें कि परिस्थितियों ने उसे सोवियत संघ की गोद में धकेल दिया था, किन्तु उसने 'स्वतन्त्र निर्णय' को समर्पित कर दिया हो ऐसा कहना सही नहीं है। उदाहरण के लिए, भारत ने ब्रेझनेव द्वारा प्रतिपादित एशिया की सामूहिक सुरक्षा अवधारणा का खुला विरोध किया। वस्तुतः भारत-सोवियत सन्धि संकट के समय के लिए 'मित्र' उत्पन्न करती है 'सैनिक गठबन्धन नहीं' और मित्रों की खोज करना गुटनिरपेक्ष नीति का निषेध नहीं। 1975 का 'आर्यभट्ट' और 1979 का 'भास्कर' और 1981 का 'ऐपल' जहां भारत-सोवियत संघ की मित्रता के प्रतीक हैं वहां वे भारत के अन्तरिक्ष में स्वतन्त्र नीति के द्योतक भी हैं। भारत ने हिन्द महासागर को केवल अमरीकी हस्तक्षेप से ही नहीं बल्कि सोवियत हस्तक्षेप से भी मुक्त रखने पर बल दिया। भारत ने अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप की भर्त्सना नहीं की, परन्तु भारत की नीति निश्चित ही विदेशी हस्तक्षेप के विरुद्ध रही और वह अफगानिस्तान से सोवियत सेनाओं की वापसी का समर्थक रहा।

असली गुटनिरपेक्षता (1977 से 1979)—जनता पार्टी के घोषणा-पत्र में 'असली गुटनिरपेक्षता' की बात कही गयी थी। **मोरारजी देसाई** का कहना था कि इन्दिरा गांधी के जमाने में विदेश

नीति एक तरफ झुक गयी थी। इस झुकाव को दूर करना ही असली गुटनिरपेक्षता है। **विदेश मन्त्री वाजपेयी** के शब्दों में, ''भारत को न केवल गुटनिरपेक्ष रहना चाहिए बल्कि वैसा दिखायी भी पड़ना चाहिए।'' उनके अनुसार, असंलग्नता का मतलब है सर्व-संलग्नता अर्थात् सबके साथ जुड़ना, सबके साथ गठबन्धन करना। जनता सरकार ने सोवियत संघ तथा अमरीका के साथ अपने सम्बन्धों को काफी दक्षतापूर्ण ढंग से निभाया और श्रीमती इन्दिरा गांधी के आखिरी दिनों में सोवियत संघ के प्रति दिखने वाले झुकाव को ठीक करने का प्रयत्न किया, किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि जनता सरकार ने सोवियत संघ के साथ रिश्ते बिगाड़ लिये या अमरीका के साथ 'नया अध्याय' शुरू कर दिया।

1980 **के बाद गुटनिरपेक्षता**—जनवरी 1980 में जब श्रीमती गांधी को पुनः भारत के प्रधानमन्त्री का पद संभालने का अवसर मिला तो भारत की विदेश नीति में जो गति आयी उसका प्रभाव सर्वत्र प्रकट होने लगा। न्यूयार्क में 1980 के अन्तिम दिनों में भारत ने असंलग्न गुट के मध्य बहुत सक्रिय होकर प्रधान मन्त्रियों एवं विदेश मन्त्रियों को आपस में विचार-विमर्श करते हेतु प्रेरित किया एवं उसने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में गिरते हुए मूल्यों को पुनर्स्थापित करने का अनुरोध किया। 1981 में भारत ने 98 असंलग्न राष्ट्रों के विदेश मन्त्रियों का सम्मेलन नयी दिल्ली में बुलाकर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रमुख बिन्दुओं पर विचार-विमर्श करने का महत्वपूर्ण अवसर उपलब्ध कराया। भारत ने 77 देशों के समूह के अध्यक्ष के रूप में अन्य राष्ट्रों के सहयोग से 1980 से लगातार इस बात का प्रयास किया है कि विश्व के आर्थिक क्षेत्र में व्याप्त संरचनात्मक एवं मौलिक असन्तुलन के अभिशाप को अविलम्ब दूर किया जाये।

मार्च 1983 में नयी दिल्ली में निर्गुट देशों का सातवां शिखर सम्मेलन आयोजित करके भारत विश्व स्तर पर निर्गुट आन्दोलन का प्रमुख प्रवक्ता बन गया। इस सम्मेलन में 101 राष्ट्रों ने भाग लिया और उन्होंने भारतीय प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को अगले तीन वर्ष के लिए निर्गुट आन्दोलन का अध्यक्ष निर्वाचित किया। श्रीमती इन्दिरा गांधी की हत्या के बाद युवा प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के लगभग एक वर्ष तक अध्यक्ष रहे। संयुक्त राष्ट्र के मुख्यालय में गुटनिरपेक्ष देशों के तैयारी सत्र में अध्यक्ष के नाते राजीव गांधी का भाषण (22 अक्टूबर, 1985) निर्गुट आन्दोलन की विश्व-शान्ति की दिशा में दिलचस्पी को उजागर करता है। बेलग्रेड में आयोजित निर्गुट शिखर सम्मेलन (सितम्बर 1989) में भारत के दृष्टिकोण को सभी प्रमुख घोषणाओं में विशेष महत्व दिया गया। भारत के प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने जो भी प्रस्ताव रखे, गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के शिखर सम्मेलन ने उन्हें यथारूप में स्वीकार कर दिया। राजीव गांधी ने दक्षिण-दक्षिण सहयोग को अधिक ठोस रूप देने की आवश्यकता बतायी। जकार्ता गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन (सितम्बर 1992) में भारत के प्रधानमन्त्री पी. वी.